अनिता रश्मि

रांची
झारखण्ड

चश्मे के पार से झाँकती आँखें

अम्मा इक्वेरियम के सामने खड़ीं होकर पीली रोशनी में नहाईं मछलियों को देखने लगीं। रंग-बिरंगे बल्ब की पीली रौशनी में तैरती मछलियाँ! गोल्ड फिश। ट्रॉपिकल! उनके चेहरे पर भी एक चमक उभर आई। मछलियाँ एक लय में तैरती हैं। और उन्हें वह लय देखना बहुत पसंद है। वे मछलियों की तेजी में खो-सी जाती हैं।

मछलियाँ अपने में मगन कभी तैरती हुईं ऊपर जातीं, कभी नीचे। सजाए गए नकली कोरल और हरे पौधों से बचती हुई वे रंगीन -सादे छोटे-छोटे पत्थरों को छूने से पहले वापस लौट आतीं।

"उनकी तेज गति में जो लय है, चाहे तो उनसे भी जीना सीख ले आदमी।" - प्रायः कहते हैं वे।

गोपाल के हाथ में एक किताब थी। वह उसमें फिर डूबने के लिए बेताब था। पर अब अम्मा सामने। उसने किताब के अंदरी पन्ने पर एक उँगली फँसाई और अम्मा को देखने लगा। अम्मा का चेहरा बल्ब की पीली रौशनी के वृत्त से घिरा है। एक जगमगाते वृत्त से।

वह चेहरा स्नेह से भरा है। जब भी वे इक्वेरियम के पास खड़ी होती हैं, उनका चेहरा ऐसे ही दमकता होता है। वह नहीं समझ पाता रौशनी के वृत्त से या स्नेह की दीप्ति से? वह उन्हें गौर से देखने लगता अक्सर।

उसने हाथ में पकड़ी किताब 'माँ' को एक नजर देखा और यूँ ही बीच में उँगली फँसाए खड़ा रहा।

उसका मन गोर्की की 'माँ' से ज्यादा अपनी अम्मा के मुस्कुराते चेहरे में रमने लगा।

गोर्की ने क्या लिख डाला है - माँ! वह उसके पचास पन्ने वहीं सोफे पर बैठे-बैठे पढ़ गया था। अंतिम पंक्ति खत्म की थी कि अम्मा तेजी से इक्वेरियम के पास आकर तैरती मछलियों को बताने लगीं,

"गोल्ड फिश को 65 डिग्री फारेनहाइट...ट्रॉपिकल को लगभग 75 डिग्री फॉरेनहाइट!...अलग-अलग टेम्परेचर चाहिए दोनों को।"

"ऐसे में एक साथ रखने से हम सब डरते थे। पर अम्मा तुम नहीं डरती। हर प्रॉब्लम का सॉल्यूशन है न तुम्हारे पास?"

अम्मा ने कबर्ड से दानेवाला डब्बा उठा, इक्वेरियम का ढक्कन खोलकर उसमें दाने डालने लगीं। लपक कर आती मछलियों की तेजी देखते बनती। लाल-पीली-नीली, नारंगी, सतरंगी मछलियाँ। दाना उनमें और गति भरता...तेज और तेज...अम्मा के चेहरे की चमक और बढ़ जाती। अम्मा जब भी वहाँ खड़ी होतीं, सब कुछ भूल वह अम्मा के चेहरे से फूट पड़नेवाले इस उजास, इस स्नेह को अपने अंदर भर लेना चाहता है। पूरा का पूरा!

कहाँ-कहाँ से ढूँढकर लाई गई थी वे मछलियाँ। ठीक उसकी तरह। निशा, अफज़ल, जॉर्ज, फातिमा, बबलू और इन जैसे अनेक बच्चों की तरह। ये बच्चे और इनके सरीखे अन्य बच्चे, किशोर, नन्हें, लावारिस या निर्धन!

अपनी माय चरकी के चेहरे पर भी देखी है यह चमकती रौशनी। यह चमकता वृत! खासकर तब, जब वह किसी काम में व्यस्त होती और श्रम के स्वेद-कण से उसका काला अभावग्रस्त चेहरा दमकता रहता। वह बगल में कंचे या गुल्ली-डंडा खेला करता। माय उसे खेलते देख स्नेह से भर उठती। जब -तब एक नजर उस पर डालती। और फिर व्यस्त!

अम्मा एक प्यारा शब्द, अपनेपन के समेटे हुए। ममत्व से भरा। दुहरे बदन की गौरवर्णी अम्मा दो कारणों से चर्चित थीं। एक साड़ी बाँधने की अपनी विशिष्ट शैली, दूसरा स्नेहिल कार्य-व्यवहार! पूरे शहर में उनका नाम आदर से लिया जाता। अम्बा बिल्डिंग के सारे बच्चों के लिए तो वे जीता-जागता ईश्वरीय रुप हैं।

उनकी मुस्कान मोनालिसा की मुस्कान को

मात देती थी पर उनके लिए कोई चित्रकार विंची नहीं था।

अम्मा वे केवल इकलौते पुत्र शिशिर की ही नहीं, टिंकू, मींटू, हुसैन, लोहित, अमरजीत कौर, टॉम, रजनी, मेरी, फरहा, दिलखुश की भी हैं। कितने बच्चे अपनी मंजिल की डोर थाम उड़ गए। पेरिस, लंदन से भी बच्चे नए माँ-पिता के साथ आते और "अम्मा-अम्मा!' कहते नहीं थकते। कई और बच्चे इस अम्बा बिल्डिंग में मौजूद हैं। कुछेक बच्चों का अब तक नामकरण भी नहीं हो पाया है। गोपाल अक्सर लड़ पड़ता,

"ठीक है, उन्होंने उन्हें अपने गर्भ में धारण नहीं किया लेकिन हैं तो वे सबकी माँ ही।"

अम्मा ने बताया था,

"कोई अपने माँ-बाप के पाप की सजा भोगता हुआ कचरे के डब्बे में, कोई ट्रेन की बोगी में, कोई माँ-पिता को खोकर फुटपाथ पर पड़ा मिला। कोई मेले की भीड़ में परिजनों से सदा के लिए बिछुड़ गया था।" वे सब अम्बा बिल्डिंग की विशाल स्नेह छाया में पहुँच गए। किसी-किसी को बच्चा चोर गिरोह से बचाकर पुलिस ने ही उन तक पहुँचाया था। कोई छोटी-मोटी चोरियाँ कर भागते हुए उन तक आ पहुँचा था। दंगों में बेघर हुए बच्चों की पूरी फौज थी। उन्होंने कई बर्बाद हो गए गाँवों को समय-समय पर गोद लिया था। वहाँ से कई बच्चों को ले आईं थीं। जैसे अम्बा बिल्डिंग नहीं, खुदा का घर हो।

भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, समुदाय के बच्चे उन्हें इक्वेरियम में जतन से बचाई गईं मछलियों की तरह लगते...साफ-चमकते हुए...स्नेह के गुड़ में पगे...तेजी से इधर-उधर भागते हुए...स्वच्छंद!...निर्द्वंद!!

"सब समा गए, सब अँट गए आपकी दोनों बाहों में। है न अम्मा?" "ईश्वर ने जन्म दिया है, खाना भी वही देगा।"

बहुप्रचलित, बहुप्रचारित उक्ति ईश्वर पर लागू होती हो या न हो, अम्मा पर जरूर होती है। अम्बा बिल्डिंग में जो आ गया, उसके लिए तो जरूर।

"यूँ खड़ा होकर क्या देखे जा रहा है, ननकू गोपाल?"

वह चौंका, "कुछ नहीं अम्मा।"

"हाथ में क्या है?...गोर्की? अच्छी है, पढ़ो।"

वे फिर व्यस्त एक जादुई मुस्कान के साथ हमेशा की तरह।

"शिशिर की चिट्ठी आई है।"

"कहाँ है?"

"टी. वी. स्टैंड पर रख दी है।"

"ठीक, लिखा क्या है?"

"वही।"

"वही, याने केवल हाल-चाल?"

"हाँ!" उनका ध्यान मछलियों की ओर ही था, उसी मुस्कुराहट के साथ। गोपाल कमरे में गया और चिट्ठी लाकर उन्हें पकड़ा दी।

गोपाल ने ही चिट्ठी पढ़कर सुना दी। वे अब भी मुस्कुरा उठीं। उनकी मुस्कान उसे बाँधने लगी। शिशिर उनका इकलौता पुत्र है। एम. बी.ए. कर पूना में नौकरी कर रहा है। शिशिर का कैम्पस सलेक्शन हुआ तो वह भी खुशी से उछल पड़ा था। अम्मा की खुशी में ही उसकी खुशी है। कितनी कम उम्र में शिशिर की नौकरी लगी। तेइस की कच्ची उम्र में ही। शिशिर तो चला गया पूना, गोपाल वहीं रह गया।

गोपाल को बचपन के दिन हमेशा याद आते...जैसे घुरि-घुरि पंछी जहाज पर आवे। अक्सरहाँ वह गलत ढंग से ही सही इस जहाज वाली बात को याद करता।

अम्मा छोटे शिशिर का हाथ पकड़कर पार्क की ओर जाती दिख जाती थीं। वे जब भी उधर से गुजरतीं, गोपाल को अपने झोपड़े के बाहर खड़े देखतीं। शिशिर से एक -डेढ़ साल ही छोटा है वह। गोपाल की माँ चरकी कभी अम्बा बिल्डिंग में आया का काम करती थी। कभी-कभार उसे भी साथ ले जाती। शिशिर से खेलकर वह सदा खूब खुश होता। उस दिन वह बहुत-बहुत खुश रहता।

गोपाल अक्सर अपने बाबा के काम में हाथ बँटाया करता। अम्मा उधर से गुजरतीं तो अम्बा बिल्डिंग की यादें तेज। उसे शिशिर कहीं का राजकुमार लगता। अम्मा किसी परी देश की रानी। शिशिर का अम्मा के पास होना उसे और भी तड़पाता।

पनीर-रोटी, लॉन की हरी-हरी कोमल घास, मखमली घास की हरियरी, बच्चों की भीड़...किलकारियाँ...बच्चों का गेंदों के पीछे भागना ...या बैडमिंटन की उजली-उजली चिड़िया को हवा में यूँ उड़ा देना

...उसे फिर-फिर याद आने लगता। वह काम छोड़ टकटकी बाँध चकोर बन जाता।

एक दिन वह दौड़कर पास चला गया था। शिशिर को देख पुकारा भी था। बहती नाक को बुशर्ट के किनारे से पोंछ ललचाई नजरों से उन दोनों को देखने लगा था।

इकलौते शिशिर की ठाठ चुभती उसे। उन बच्चों की भी, जो अम्मा के थे ही नहीं। उसे अपने माय-बाबा से चिढ़ हो जाती। उसकी आँखों में कुछ था जरूर! तभी अम्मा ने पकड़ लिया था। उस दिन उसकी आँखों से झर-झर आँसू ढर रहे थे। घर में उपेक्षा, डाँट, अत्यधिक काम...।

आँसू बनकर उस दिन यह उपेक्षा बह रही थी। अम्मा और शिशिर को देखते ही ललक कर आगे बढ़ा। पीछे-पीछे माय भी आ गई थी।

"इसे क्या बनाना है तेतरी?"

"का बनाएँगे मलकिन। अब्भी तो छोटा है। आठेक बरिस का होने पर कहीं काम-धंधा पकड़ ही लेगा।"

"क्या काम?"

वह नाक सुड़कता उन्हें देखता रहा।

"कहीं ईंटा-भट्ठा या फैक्टरिया में लगा देंगे, और का।" - माय के सपनों की आँच से झुलस उठा था गोपाल। उसकी माय की आँखों में उसके लिए इतने ही सपने थे। सपने कि सपनों की पतझड़? अक्सर वह अब भी उलझ जाता है।

"इसे मुझे दे दो।" - अम्मा ने कहा था।

"ई गोपलवा को?...एतना छोटका छौंड़ को लेकर का कीजिएगा?"

"हम पढ़ाएँगे इसे।"

माय को विश्वास नहीं हुआ था। फटे गुलाबी आँचल समेत उसका हाथ मुँह पर चला गया था। गाँव से आए हुए नौ साल हो गए थे। इस तरह की बात से वह अनजान थी। पर अम्मा तो अम्मा ठहरीं।

"इसे हमें देना ही पड़ेगा तेतरी। इसकी आँखों में एक आग है। उसे बचाने की जरूरत है।"

"का...का बोले, का है?... आग...कहाँ?"

माय ने गोपाल की आँखों में आँखें गड़ा दीं। उसे कुछ भी नजर नहीं आया, सिवाय कीच के। वह आँचल से उसी को पोंछने लगी थी। अम्मा आगे बढ़ आई थी।

"तुम नहीं समझोगी तेतरी...इसे हमें दे दो बस।"

"इसे आप ले जाइएगा तो हामर काम-धंधा कउन...?"

"घबराओ मत। हम कुछ काम कराएँगे। तुम्हारे पास एक तारीख को इसका वेतन पहुँच जाया करेगा।"

अम्मा माय-बाबा के स्वाभिमान की रक्षा ऐसे ही कर सकती थीं। उस समय नहीं, पर बाद में समझ गया था गोपाल।

ना-नुकूर ज्यादा हुई नहीं और वह आ गया अम्बा बिल्डिंग!...अपने सपनों के परी देश में।

। उसकी निरर्थक ज़िंदगी को प्यार-दुलार की खाद मिली। संतुलित धूप, हवा, पानी भी मिला...वह पल्लवित-पुष्पित। यहाँ उसके हिस्से की धूप, हवा, पानी को किसी ने बाँधा नहीं, बाँटा नहीं। सबके हिस्से में भरपूर धूप थी, हवा थी, पानी था। यहाँ सुंदर क्यारी में वह भी सज गया।

गोपाल कब, कैसे शिशिर का अनुज बनता चला गया, किसी को एहसास ही नहीं हुआ। थोड़ा मुखर! थोड़ा मुँहलग्गू भी! कई बार वह सवालों से घिर जाता, 'यदि अम्बा बिल्डिंग नहीं आता तो ?' वह जान बूझकर इस 'तो' से जूझना चाहता है।...तो वह एक फुटबॉल होता...इधर से उधर...उधर से इधर! जिंदगी उसे किक लगाया करती...वह भी बड़े मनोयाग और प्रेम से...।

एक दिन उसने अम्मा को जा घेरा था,

"आपको क्या मिलता है अम्मा इतने बच्चों को संँभालकर?"

"संतोष !...बहुत संतोष रे ननकू गोपाल!"

उस दिन अपनी जिंदगी का पूरा कच्चा चिट्ठा बता गई थीं,

"पापा सबके दुख-बलाय को अँजुली में भरकर पी जानेवाले संत ठहरे...मैं थोड़ा ज्यादा ही नाजुक-दिल थी। किसी के दर्द से इतना दुखी हो जाती कि गहरे उपवास में चली जाती। पापा ने पहचान लिया। फिर तो उनका ऐटिट्यूट ही बदल गया।"

वे अपने साथ मुझे भी जेल के कैदियों से मिलाने ले जाते, तब हमारे हाथों में गिफ्ट पैक होते। ढेरों संवेदनाएँ, ढेरों प्यार भी! हम तब हम न रहते। अपना दुख-तकलीफ, खुशी-गम बहुत छोटा लगने लगता।

सलाखों के पीछे कई बार निरपराधों को भी देखा। नाबालिगों को भी, खुद के बोझ से दबी विपन्न स्त्रियों को भी। सन्नाटे को तब चीर पाना संभव न होता। पिताजी की कोशिशों से ही उन कैदियों को गाने-बजाने, पेंटिंग की शिक्षा दी जाने लगी थी। तब हम भाई-बहन उस धूसर रंगों के बदलते जाने के भी गवाह रहे थे। हम पर भी रंग चढ़ा और बस... शुरु।

******

और एक दिन क्यारियों को सींचती खिली-खिली रहनेवाली अम्मा लाश बनकर मुरझाई पड़ी थीं। उनकी गलती बस इतनी, गेट के बाहर पिस्तौल थामे शोहदों के झुंड को एक-दूसरे पर वार करने से मना किया था। उन्हें जोरदार डाँट पिलाई थी, "शर्म नहीं आती? जीवन देने की शक्ति नहीं, फिर लेते क्यों हो? यह उम्र पुस्तक थामने की है या हथियार?"

उन लोगों का निशाना बदल गया था और दोनों तरफ की एक-एक गोलियाँ अजब से असहिष्णु व बेईमान वक्त की गवाह बन गईं। तत्काल अम्मा के रक्त से सन गई कोमल घास।

....

आज अम्मा की मछलियाँ भी जैसे उदास। हताश, स्तब्ध गोपाल एक्वेरियम के ऊपर दीवार पर सज गई अम्मा की माला को देखे जा रहा था। अजब सी बेचैनी में घिरा उस तस्वीर से झाँकती आँखों से पूछ बैठा, "इतनी भी क्या जल्दी थी?... अब इनको कौन देखेगा अम्मा? तेरहवीं कर शिशिर भी तो गया वापस।"

बच्चे भी स्तब्ध! बाहर बरामदे में चुपचाप बैठे थे। हर तरफ पिन ड्रॉप सन्नाटा! तभी सबसे छोटा राही पास आया। हाथ खींचते हुए बोला, "भैया, कहानी नहीं सुनाओगे?...अम्मा की तर...ह।"

"अम्मा की तरह?" वह चौंका। उसकी निगाहें ऊपर उठ गईं। अम्मा की गहरी आँखें चश्मे के पार से मुस्कुरा रही थीं। एक हसरत उनकी आंखों में खुदी थी।